**International Journal of Hindi Research**
**ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22**
**www.hindijournal.com**
**Volume 3; Issue 3; May 2017; Page No. 109-110**

# नवजागरण में सरस्वती पत्रिका की भूमिका

**डॉ. राधाकृष्ण दीक्षित**

एसोशिएट प्रोफेसर, के0ए0 (पी0जी0) कॉलेज, कासगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

**प्रस्तावना**

विचारक चाहें जो भी नाम दें, लेकिन इतना तो निश्चित है कि 1857 इस अराजक, पक्षपाती, शोषित, उपेक्षित और अमानवीय कृत्यों के प्रति भारतीय लोक का विद्रोह था, जिसे लम्बे काल से वह सहता चला आ रहा था। हम इसे विद्रोह कहें, बलवा कहें या गरक, दगा कहें या स्वाधीनता संग्राम का प्रथम युद्ध, यह तो शब्दों की सामर्थ्य है, जो अपने अर्थ देती है, पर भारतीय किसान, श्रमिक, व्यापारी, शिल्पी, साहित्यकार, पत्रकार और कलाकार से लेकर, जनसामान्य तक के शोषण, उत्पीड़न और अधिकारों के हनन से तिलमिलाए भारतीय हृदयों में प्रतिशोध की जो ज्वालायें धधक रहीं थीं, यह उसका ही प्रतिफल था। भारतीय शिक्षा व्यवस्था को चौपट करतीं उनकी नीतियाँ, भारतीय कृषि एवं व्यापार व्यवस्था को लूटती उनकी योजनाऐं, भारतीय धर्मों में फूट डालकर ईसाई धर्म का प्रचार–प्रसार करती उनकी षडयंत्रकारी गतिविधियाँ सबकी सब चीजें भारतीयों की दृष्टि में साफ होती चलीं जा रहीं थी– हद तो तब हुई जब दमन और कूटनीति के कुचक उन्होनें भी रचना शुरू कर दिए, जिस सेना के बल पर उन्होंने भारत के अन्दर ही नहीं बाहर भी विजय प्राप्त की थी। यहाँ भी उसकी शोषण, भूख और फूट की कहानी दोहराई गई, फिर क्या था, आक्रोश का लावा फूटा, जिससे सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य हिल गया। अवध हो या मेरठ, हरियाणा हो या बिहार अंग्रेजों के प्रति विद्रोह और प्रतिशोध का यह दृश्य लगभग सभी जगह दिखाई देने लगा।

भारतीय जनमानस का यह सक्रिस प्रतिशोधात्मक आंदोलन, अपनी स्वतन्त्रता के लिए सामूहिक प्रथम बड़ा प्रयास था। अपनी सामूहिकता, आत्मबोध, जनशक्ति और जागृति से सब भारतीय परिचित हुए तो उन्हें बोध हुआ कि हम यदि जड़ता त्याग दे तो स्वतन्त्रता हमारे कदमों में होगी। आत्मबोध के इस काल को हिन्दी में पुनर्जागरण 'पुनरूत्थान', 'नवजागृति' 'नवोदय', पुनरूज्जीवन आदि नामों से पुकारा गया। किन्तु यूरोपीय 'रेनसॉं' के आधार पर एक और शब्द प्रचलन में आया। जिसका नाम 'नवजागरण' था। जो सर्वमान्य हुआ। भारत के उन्नायक विचारकों ने इसे सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक कोणों से भी व्याख्याति किया। 'बन्देमातरम्' अपने 12 अप्रैल 1908 के अंक में लिखता है किः–

'नवजागरण वस्तुतः पुनर्जन्म है और पुर्नजन्म व केवल बुद्धि से, न पूर्ण आर्थिक समृद्धि से, न नीति या सिद्धान्त से या न प्रशासनिक परिवर्तन से होता है। वह तो नया हृदय प्राप्त करने, त्याग की अग्नि में अपना सर्वस्वस्व होम करने, और माँ के गर्भ में पुनः जन्म लेने से होता है''[1] तो डॉ देवराज पथिक कहते हैं कि ''जब कभी भी समाज अथवा राष्ट्र की परम्परागत मूलधारणा को कोई समाज अथवा राष्ट्रत ग्रहण करता है और वह विचारधारा किसी निश्चित लक्ष्य अथवा ध्येय के आलोक में आगे बढ़ती है तो राष्ट्रीयता की भावना जागृत होती है। इसी जागृति को राष्ट्रीय नवजागरण के नाम से सम्बोधित किया जाता है।''[2] मार्डन इण्डियन थॉट में विश्वनाथ नरवणे कहते हैं – ''पुनर्जागरण का अर्थ है नवीन आलोक, भविष्य की ओर बढ़ने की एक क्रांतिकारी प्रेरणा, घिसेपिटे रीतिरिवाजों की जंजीरों से मुक्ति।''[3] इन नये विचारों को नेतृत्व देते हैं विचारक और अभिव्यक्ति का माध्यम होती हैं पत्र– पत्रिकाऐं या साहित्य जो जड़ता से चेतनता की यात्रा का संवाहक होते हैं। भारतीय नवजागरण को जहाँ राममोहन राय, केशव चन्द्र जैन, विवेकानन्द, स्वामीदयानन्द जैसे विचारकों ने नव्य विचारों से आन्दोलित किया वहीं हिन्दी प्रदीप (1877) कविवचन सुधा (1898) हरिशचन्द्र मैगजीन (1873), ब्राह्मण (1883) जैसी भारतेन्दुकालीन पत्रिकाओं ने नवजागरण को ठोस आधार प्रदान किया। हॉलांकि इस युग में हितवाणी (1904) नृसिंह (1907) कर्मयोगी (1909) और मर्यादा (1909) जैसी भी अनेक पत्रिकाऐं प्रकाशित हो रहीं थीं किन्तु इन सबमें 'सरस्वती' अपने नये चिन्तन और अवधारणाओं की दृष्टि से अलग थीं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी सन् 1903 में सरस्वती के सम्पादक बने तो उन्होंने सर्वप्रथम रीतिकालीन प्रवृत्तियों के विरूद्ध वातावरण बनाने का प्रयास किया। प्रवृत्तियों और विषयों को लेकर ही नहीं, बल्कि भाषा के नवजागरण की प्रेरणा भी उन्होंने 'सरस्वती' में दी। उन्होंने काव्य की भाषा के प्रचलित ब्रजभाषा स्वरूप को त्यागकर उसके स्थान पर खड़ी बोली को अपनाने को प्रेरित किया। वास्तव में 'सरस्वती' का योगदान 'नवजागरण' की इस वेला में अद्भुत था। डॉ0 रामविलास शर्मा ने ''आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और नवजागरण' में द्विवेदी जी के योगदान को रेखांकित करते हुए एक तरह से 'सरस्वती' के महत्व को प्रतिपादित किया है। 'सरस्वती' में प्रकाशित द्विवेदी जी के नवविचारों से प्रभावित होकर ही नव दृष्टि धारक, विचारक और साहित्यकार पंक्तिबद्ध हुए जिनमें, मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गया प्रसाद 'स्नेही' आदि थे। जिन्होंने अपने साहित्य में नवचेतना को स्थान दिया। अत 'सरस्वती' दिन–प्रतिदिन निखर रही थी, तब स्वाभाविक ही लोगों का आकर्षण उसकी ओर बढ़ा। 'सरस्वती' में अपनी रचना के प्रकाशन को सृजनकार महत्वपूर्ण मानने लगे। रचनाकार अपने आग्रहों से मुक्त हो रहे थे। अब ब्रजभाषा का स्थान खड़ी बोली लेने लगी। नव विषय, नवउपमान और नयी आचार पद्धति से संजी कविताऐं सरस्वती में अपना स्थान पाने लगीं। 'सरस्वती' के इर्द–गिर्द बड़ी संख्या में कवियों का भी झुण्ड इकट्ठा होने लगा। जिनमें श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय, हरिऔध जैसे भी कवि थे जो राष्ट्रचिन्तन की दिशा को नव चेतना प्रदान कर रहे थे।

'सरस्वती' में प्रकाशित साहित्य अब सृजनकारों को भी प्रेरणा प्रदान करने लगा– तभी तो 'सरस्वती' में द्विवेदी जी के एक निबन्ध से प्रेरणा पाकर मैथिलीशरण गुप्त ने साहित्य में चिर उपेक्षिता 'उर्मिला' को 'साकेत' के स्वरूप में प्रतिस्थापित किया। इस हेतु उन्होंने इस ओर संकेत भी किया है–

**''करते तुलसीदास भी कैसे मानस नाद्**
**महावीर का यदि नहीं मिलता उन्हें प्रसाद।**

'सरस्वती' का प्रकाशन नवयुग की आकांक्षा के प्रकाशन और उसकी

पूर्ति के निमित्त हुआ था। उस समय कुछ पत्रिकायें पहले से भी चली आ रही थी, जैसे 'हिन्दी प्रदीप' और 'आनंदकांदबिनी'। ये अपने ढंग की अच्छी पत्रिकांए थीं पर इनका बाह्य आवरण पुराना था और कुछ भीतर की विषय वस्तु भी अपेक्षित नवीनता से रिक्त ही सी थी। केवल 'हिन्दी प्रदीप' की विषय–वस्तु में कुछ अधिक आधुनिकता थी, पर आर्थिक कठिनाइयों के कारण वह बहुत लड़खड़ाती हुई चला रही थी।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है 'सरस्वती' आधुनिक समाज और साहित्य की कुछ आधुनिक कतिपय विशिष्ट आधुनिक समस्यओं की पूर्ति के लिए निश्चित उद्देश्य को लेकर चली थी। उस तरह का व्यापक 'मिशन' लेकर उस समय की कोई नई पत्रिका नहीं निकलीं। जयपुर का 'समालोचक' कुछ दृष्टियों से एक अच्छा पत्र था, पर उसके साधन बड़े सीमित प्रतीत होते हैं और उसका संबंध केवल समीक्षा– संबंधी कार्यों से है। प्रयाग की 'मर्यादा' पत्रिका उस समय के विचार से अच्छे ढंग से निकली थी पर वह मुख्यतः राजनीतिक विषयों से संबद्ध थी। साहित्यिक लेख भी छपते थे पर वह मुख्यतः राजनीतिक विषयों से संबद्ध थी। उनकी भाषा भी अच्छी होती थी, पर 'सरस्वती' जैसे व्यापक उद्देश्य उसके नहीं थे। काशी की 'इन्दु' 'सरस्वती' की प्रतिक्रिया में निकली। मुख्यतः यह एक कथा प्रधान प्रधान पत्रिका थी, लेकिन कविता, निबंध आदि अन्य विधाएं भी इसमें प्रकाशित होती रहती थीं। प्रधान रूप में 'इन्दु' छायावादी प्रवृत्तियों की पुरस्कर्त्री थी और इसी दृष्टि से उसका महत्व है पर 'सरस्वती' का ऐतिहासिक महत्व भाषा, साहित्य और विषय–विस्तार सभी दृष्टियों से अधिक है रूपरंग में अच्छी होते हुए भी 'सरस्वती' का मुकाबला वह नहीं कर सकती। पूर्व उल्लिखित दो पत्रिकाओं की तरह यह भी अल्पजीवी पत्रिका ही थी।

'सरस्वती' के आरम्भिक बीस वर्षों की समकालीन ये ही मुख्य पत्रिकाएं हैं। 'सरस्वती' प्रत्येक दृष्टि से इन सबको तुलना में आगे है, इसका ऐतिहासिक महत्व बढ़ा है, इसके लिए हुए साहित्यिक कार्यों के परिणाम अधिक दूरगामी हैं। उपर्युक्त पत्रिकाओं में न तो विषयों का जैसा वैविध्य है, न भाषा की व्यवस्था और नियमन का वैसा सतर्क उद्योग।

'सरस्वती' ने नवयुग की साहित्य और भाषा विषयक आकांक्षाओं का ऐसा स्वस्थ उद्घोष किया और उन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ऐसा उद्योग किया कि शीघ्र ही उसने तत्कालीन हिन्दी साहित्य–जगत का नेतृत्व प्राप्त कर लिया। मैथिलीशरण गुप्त जैसे लेखकों को भी भाषा और छंद आदि में शैथिल्य रखने के कारण 'सरस्वती' सम्पादक की फटकर सुननी पड़ी थी।

'सरस्वती' द्वारा प्रेरित विषय–वस्तु और भाषा–सम्बन्धी मान्यताओं को अपने समय में व्यापक स्वीकृति प्राप्त हुई। उसका जैसा प्रभाव हिन्दी की और किसी पत्रिका का नहीं रहा।

सरस्वती के प्रभाव का आकलन कई दृष्टियों से हो सकता है। उसने खड़ी बोली को काव्य भाषा बनाने का ऐतिहासिक उद्योग किया। गद्य और पद्य की भाषा को एक रूप करने के लिए उसने एक प्रकार से एक नियमित आन्दोलन ही चलाया।

'सरस्वती' ने खड़ी बोली भाषा का व्यवस्थित, नियमित और व्याकरण बद्ध–करने के लिए अनेक रूप प्रयत्न किए। उच्चारण सम्मत भाषा के स्थान पर उसने भाषा का व्याकरण–सम्मत परिनिष्ठित रूप ही नहीं प्रस्तुत किया, बल्कि उसके विकास और प्रसार में भी योग दिया। इसके जैसे प्रयास के पूर्व में नहीं हुए थे। 'सरस्वती' में प्रकाशित कविताओं में तत्कालीन रूचि का पता लगता है, अधिकॉश कविताएँ प्रकृति से सम्बद्ध है, कुछ संस्कृत–श्लोकों के अनुवाद भी हैं किन्तु उस ब्रजभाषा के युग में भी 'सरस्वती' ने पहले ही वर्ष खड़ी बोली की तीन–चार कवितायें प्रकाशित कीं। 'सरस्वती' में प्रकाशित पहली खड़ी बोली कविता ब्रजभाषा के कवि पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदीजी की है, अतएव कविता के क्षेत्र में प्रथम वर्ष से ही 'सरस्वती' ने खड़ी बोली कविता को जब ब्रजभाषा के प्रधानता थी प्रोत्सहान देना शुरू किया।[6]

'सरस्वती' का वास्तविक अभ्युत्थान आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादन से शुरू होता है द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' का सम्पादन भार सन् 1903 से संभाला, द्विवेदी जी के आने के साथ ही 'सरस्वती' का बाह्य और आम्यंत तेजी से बदलने लगा। उन्होंने अनेक नवीन विषयों का समावेश किया। उनके आने के पूर्व सरस्वती में अद्भुत या विचित्र, आध्यात्मिक विषयों, साहित्यिक समाचारों, विविध वार्ता, पुस्तक परिचय आदि का अभाव था। साथ ही साथ गद्य–भाषा में भी प्रौढ़ता न आ पायी थी। लेकिन 'सरस्वती' के सम्पादक–रूप में द्विवेदी जी के आते ही गद्य एवं पद्य की भाषा को परिष्कृत करने का अद्यो प्रयास किया जाने लगा। गद्य और पद्य की क्रमशः खड़ी बोली और ब्रज दो भाषायें हों इसका भी द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' में विरोध किया। अब गद्य के साथ ही साथ पद्य की भी भाषा खड़ी बोली हो गई। खड़ी बोली का पद–विन्यास, वाक्य–विन्यास और व्याकरण भी दोषपूर्ण ही था। इसे 'सरस्वती' ने कभी भाषा सुधार सम्बन्धी लेखों को प्रकाशित करके तथा कभी–कभी लेख या पुस्तक आदि की भाषा की आलोचना निकालकर किया। 'सरस्वती' में द्विवेदी जी के अतिरिक्त कामताप्रसाद, गुरूवद्रीनाथ भट्ट, यज्ञनारायण शर्मा आदि ने भी भाषा– सम्बन्धी नियमन और व्यवस्था, भाषा सम्बन्धी एक सामान्य नीति का समर्थन और प्रचार, खड़ी बोली की भाषा को मांजने और हिन्दी गद्य की विभिन्न शैलियों के व्यवहार और विकास का प्रयत्न किया। आलोचना के भी अनेक रूप विकास 'सरस्वती' में दृष्टव्य हैं। सामाजिक सन्दर्भ में साहित्य के पर्येवक्षण का सूत्रपात 'सरस्वती' के माध्यम से आया। इसके उन्नायक शुक्ल जी व द्विवेदी जी प्रमुख रूप से हुए। पद्मसिंह शर्मा, अक्षयवट मिश्र तथा बदरीनाथ भट्ट आदि ने तुलनात्मक आलोचना का कार्य 'सरस्वती' में किया।

निश्चित ही हिन्दी के नवजागरण में 'सरस्वती' का अपना महत्वपूर्ण योगदान है। उसने नयी वैचारिक चिन्तन की दृष्टि ही प्रदान नहीं की बल्कि भाषा के स्वरूप में परिवर्तन के साथ–साथ अनगिनत नये रचनाकारों को आलोकित किया तथा जन सामान्य को राष्ट्रीय सोच, समाज सुधार, कुरीतियों का परिमार्जन और स्वतन्त्रता की ओर कदम बढ़ाने की भी प्रेरणा दी

## संदर्भ


1. 'बन्देमातरम्' साप्ताहिक– 12 अप्रैल 1908
2. डॉ देवराज पथिक, नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना, पृष्ट 17
3. विश्वनाथ नरवणे, 'मार्डन इण्डियन थॉट पृष्ठ' 8
4. डॉ सन्तबख्स सिंह– आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में सरस्वती का योगदान पृ0 28–29 श्रीनेत प्रकाशन ज्ञानपुर भदोही।
5. डॉ सन्तबख्स सिंह– आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में सरस्वती का योगदान पृ0 88–89 श्रीनेत प्रकाशन ज्ञानपुर भदोही।
6. डॉ सन्तबख्स सिंह– आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में सरस्वती का योगदान पृ0 90